|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

1/3 (श्लोक 1-10), रविवार, 05 अक्टूबर 2025

विवेचक: वरिष्ठ प्रशिक्षक सौ श्रद्धा जी राओ देव

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/YwArCdjIY6I

संसारी से संन्यासी बनने का प्रवास

आज के सत्र का आरम्भ गुरु वन्दना, हनुमान चालीसा पाठ और दीप प्रज्वलन से हुआ। यह अध्याय कर्मयोग का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, इसलिए यह बहुत विशेष अध्याय है। अगर हमें गीता नहीं आती तो हमारा जीवन कठिनाइयों से गुजरता है और यदि हम यह गीता अपने जीवन में आत्मसात् कर लें तो हमारा जीवन अधिक सुगम हो जाएगा। गीता हमारे जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हम अगर यह जान लें तो हमें यह अध्याय समझने में बहुत ही सरलता होगी। गीता को कभी एक साधारण पुस्तक के रूप में देखने का संस्कार हमें मिला ही नहीं है। गीता जी को हमेशा हमने एक देवी के रूप में, एक माँ के रूप में देखा है क्योंकि यह हमें जीवन जीने का मार्ग दिखाती हैं।

मनुष्य का जीवन मूल्यवान है, मनुष्य जन्म साधारण नहीं है। हमारे जीवन का सबसे अनमोल पाठ हमें गीता जी ही प्रदान करती हैं। असाधारण जीवन का सही मूल्याँकन कर पाएँ, अपने जीवन में कुछ अच्छा कर पाएँ, ये सब बताने वाला ग्रन्थ भगवद्गीता है। यह माँ हमें यह नहीं सिखाती कि सब कुछ छोड़कर संन्यास लेकर जङ्गल में चले जाओ, क्योंकि हर किसी के मन में कभी न कभी यह बात अवश्य ही उठती है कि यह जीवन है इससे अच्छा तो हम संन्यास ले लें, परन्तु यह ग्रन्थ भगाने वाला नहीं है।

प्रथम और द्वितीय अध्याय में अर्जुन के मन में भी ऐसी बात आ गई और वे कहने लगे-

"मुझे तो कुछ अपना कार्य करना नहीं है। मैं योद्धा हूँ।"
अर्जुन उस समय के सबसे श्रेष्ठ योद्धा थे, किन्तु उन्होंने कह दिया कि मुझे संन्यास लेना है, मुझे यह युद्ध नहीं करना है। वे अपने सारे शस्त्र डाल कर बैठ गये।

अर्जुन कहने लगे-
"हे भगवन् आप कह रहे हैं कि ज्ञान महान है तो मुझे संन्यास लेना है।"

इस पर श्रीकृष्ण जी कहते है, "अरे! क्या तुम संन्यास का अर्थ जानते हो?"

इस पञ्चम् अध्याय में श्रीकृष्ण यही बताना चाहते हैं कि तुम कह रहे हो संन्यास लेना चाहते हो और अर्जुन कह रहे हैं कि मुझे अपने सम्बन्धियों को मार कर भोग नहीं चाहिए।

इसका सूक्ष्म अर्थ यह निकलता है कि मुझे भोग तो चाहिए, किन्तु अपने सम्बन्धियों को मार कर मुझे भोगों का आनन्द नहीं लेना है। अपनी वृत्ति से भागकर योद्धा के रूप में नहीं, पर वे भोग मिल जाते हैं तो अच्छा है।

हम भी कभी-कभी अपने जीवन में सोचते हैं कि हम भी भाग जाएँ, जीवन में जो ये सुख-दुःख आते हैं, सारी कठिनाइयाँ आती रहती हैं, हम सभी उनसे भागने का कोई न कोई मार्ग ढूँढते रहते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि भाग जाना संन्यास नहीं है और कर्म करते-करते आप संन्यास भी प्राप्त कर सकते हैं और यही बताने वाला ये पञ्चम् अध्याय है।

कर्मयोग का संन्यास के साथ जब सम्बन्ध जोड़ा जाता है तो यह बहुत आश्चर्यचकित करने वाला मूल मन्त्र नजर आता है। कर्मयोग एक मार्ग है, संन्यासयोग एक मार्ग है और कर्म करते-करते संन्यास एक अलग बात है, तो ये सारी चीजें आपस में काफी कठिन नजर आती हैं।

तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम् ये तीनों अध्याय
किसी न किसी रूप में कर्मयोग से जुड़े हुए हैं।

कर्मयोग- जो कर्म हम कर रहे हैं, संसार में रह रहे हैं।
योग का अर्थ है- जुड़ना, उस परम शक्ति ईश्वर से जुड़ना।

कार्य करते-करते, जिस तरीके से कार्य करते हैं उससे ईश्वरीय शक्ति से जुड़ जाते हैं, वह कर्मयोग बन जाता है। इसकी बहुत ही गहन मीमांसा तृतीय अध्याय में आती है। इसको ज्ञान के साथ जोड़ दिया जाता है। चतुर्थ अध्याय में ज्ञानकर्मसंन्यासयोग आता है।

श्रीकृष्ण जी द्वारा दो-तीन बातें बोलने पर अर्जुन बोल रहे हैं कि मुझे संन्यास लेना है। संन्यास की सारी बातें बताते-बताते श्रीकृष्ण जी ने कर्म और ज्ञान के बीच कुछ ऐसी तुलना द्वितीय अध्याय के संवाद में कर दी है कि जहाँ ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कर्म की तुलना में ज्ञान अधिक श्रेष्ठ है। तब अर्जुन कहते हैं कि आप एक बात बताइए कि कर्म श्रेष्ठ है या ज्ञान श्रेष्ठ है। दोनों के बीच में अगर मुझे एक चुनना है तो मैं तो कह रहा हूँ कि मैं संन्यास लेता हूँ, कहीं जा कर ज्ञान साधना करता हूँ, अगर यह बात श्रेष्ठ है तो क्यों आप मुझे फिर भी कर्म में डाल रहे हैं, भोग कर्म में डाल रहे हैं? ऐसा आरोप वे श्रीकृष्ण जी पर डालते हैं।

द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

अर्जुन कहते हैं, हे भगवान् कभी आप कहते हैं कि ज्ञान की तुलना में कर्म साधारण वस्तु है और कहीं कहते हैं कि कर्म करो तो मेरी बुद्धि इन वाक्यों के कारण मिश्रित हो रही है। इस विषय आप एक बात कहिए।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥

वहाँ भी एक ही बात कही और उसके बाद तृतीय अध्याय की मीमांसा श्रीकृष्ण जी ने बहुत ही सुन्दर कर्मयोग के बारे में कह कर की। उसी का विस्तार करते-करते फिर ये बात आ गई कि अर्जुन अभी भी यही कहे जा रहे हैं कि कर्म श्रेष्ठ है तो मैं क्यों ज्ञान अर्जन करूँ? और ज्ञान श्रेष्ठ है तो क्यों मैं कर्म करूँ? ऐसी परिस्थिति में अर्जुन कहते हैं कि कभी आप कह रहे हैं कि ज्ञान श्रेष्ठ है, कभी आप कहे रहे हैं कर्म श्रेष्ठ है, मै करूँ तो क्या करूँ? इन दोनों में से मेरे लिये श्रेयस्कर क्या है? आप यह बताइए।

अर्जुन ने पहले भी द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक में कहा है-

यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् || 7||

जब अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् के समक्ष पूर्ण समर्पण कर देते हैं, तब श्रीभगवान् अर्जुन के लिये अपने हृदय के द्वार खोल देते हैं और गीता गङ्गा बहने लगती है। इस संवाद में साङ्ख्यज्ञान और कर्म की बातें आती हैं। अर्जुन कहते हैं कि मेरे लिये श्रेयस्कर क्या है?

5.1

अर्जुन उवाच सन्न्यासं(ङ्) कर्मणां(ङ्) कृष्ण, पुनर्योगं(ञ्) च शंससि। यच्छ्रेय एतयोरेकं(न्), तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥5.1॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! (आप) कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। (अतः) इन दोनों साधनों में जो एक निश्चित रूप से कल्याण कारक हो ,उसको मेरे लिये कहिये।

विवेचन- श्रीकृष्ण जी की पहले की बातें याद करते हुए अर्जुन कहते हैं कि कर्म ज्ञानयोग की तुलना में एक साधारण बात है। जहाँ आपने पहले कहा था कि-

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ 3:2

आप मिश्रित वाक्य कर रहे हैं, आप अलग-अलग बात कह रहे हैं। श्रीकृष्ण जी कहना तो चाहते हैंं कि दोनों एक ही हैं पर वे बात कुछ और ही कहे रहे हैं। वे दोनों को अलग-अलग बता ही नहीं रहे हैं। कर्मयोग से भी ज्ञानयोग प्राप्त कर सकते हो और वह ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हो जो आपको साङ्ख्ययोग के ज्ञान से प्राप्त हो सकता है, परन्तु सुनने वाले की दृष्टि एक ही होती है।

कोई भी कहीं दुकान पर कुछ खरीदने जाता है तो ग्राहक कहता है, मुझे यह वस्तु इतने दाम में चाहिए, इतनी कीमत पर चाहिए। दुकानदार कहता है कि नहीं इतना कम तो नहीं होगा चलो आप पाँच सौ में ले लो, पर सामने वाले को तीन सौ या चार सौ में चाहिए। ग्राहक तब तक अपनी बात बोलेगा, जब तक वह अपने मन की बात नहीं सुनता। तब ग्राहक कहता है कि आप एक बात बता दीजिए अब वह बेचारा दुकानदार तो उसको पहले से ही एक बात कह रहा है परन्तु ग्राहक उसको कहता है कि नहीं, आप एक बात अन्तिम रूप से बता दीजिए। एक कीमत बता दीजिए, क्योंकि उसके मन में जो बात है वह अभी तक आई नहीं है। दुकानदार से यही कहता है कि एक बात बोलो। कहने का अर्थ यह है कि ग्राहक अपने मन की बात बुलवाना चाहता है।

अर्जुन के मन में भी यही है कि यहाँ से निकल जाएँ, इसलिए यह कहते- कहते बोलते हैं कि आप मेरे मन की बात सुन लीजिये कि हाँ! संन्यास ले लो और ज्ञान श्रेष्ठ है, इसलिए ज्ञान की साधना कर लो। अर्जुन यही सुनना चाहते हैं शायद इसलिए बार-बार वे एक ही बात बोल रहे हैं और उस एक बात में भी वे विशेष रूप से क्या कहते है- जो मेरे लिए श्रेयस्कर है वह बोलिए।

दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातें हैं, एक श्रेयस् और एक प्रेयस्।

जो प्रिय होता है वह हो जाता है वह प्रेयस् है, पर जो मुझे प्रिय है वह मेरे लिए श्रेयस्कर भी है यह आवश्यक नहीं है।

कभी-कभी हमारे लिए जो बात प्रिय है, वह हमारे लिए हानिप्रद भी हो सकती है। जब हम गीता पढ़ते हैं तो गीता के श्लोक का अर्थ ही देखते रहें ये आवश्यक नहीं है। उसके साथ अर्जुन की कुछ ऐसी बातें भी समझनी चाहिए जिससे हमें ये पता चले कि अर्जुन श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय क्यों है? अर्जुन की विशेषता को हम जान लें।

गीता हम सभी पढ़ना चाहते हैं पर हम सिर्फ पढ़ना नहीं चाहते।

गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें।

गीता को जीवन में लाना है तो अर्जुन के गुणों को भी समझना पड़ेगा।
अर्जुन की दृष्टि कैसी है? अर्जुन की वृत्ति कैसी है? अर्जुन की वृत्ति ऐसी है कि मैं हमेशा श्रेयस् की तरफ जाऊँ। माना कि जो उन्हें सुनना है वह सुनने में नहीं आ रहा है कि संन्यास ले लो और ज्ञान अर्जन करते रहो और कर्म करने से निवृत्ति मिल जाए। अर्जुन जो सुनना चाहते हैं वह उनके लिए प्रेयस् है, पर वे चाहते है कि जो मेरे लिए श्रेयस्कर है, मेरे लिए जो उचित है, जो मेरा उद्धार करेगी, जो मोक्ष के मार्ग पर ले जायेगी, ऐसी बात करो। अर्जुन श्रेयस् की बात पहली बार नहीं कर रहे हैं। सबसे पहले उन्होंने द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक में कहा है-

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

जो मेरे लिए श्रेयस् हो वह निश्चित रूप से चाहिए। मैं आपका शिष्य हूँ। प्रथम अध्याय में अर्जुन ने बहुत बड़ी-बड़ी बातें कह दी। बहुत सारी ज्ञान की बातें अर्जुन करते हैं, पर उनका जो भी कहना होता है, उनका विषाद भी विषादयोग बन जाता है। अपनी बात रखने के बाद, जब वे श्रीकृष्ण का शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं, तब जाकर श्रीकृष्ण भी अर्जुन के लिए अपने ज्ञान और हृदय के द्वार खोलते हैं। गीता गङ्गा बहने लगती है और इसमें सुन्दर संवाद है। अनेक सुन्दर-सुन्दर बातें भी उस अध्याय में आती हैं जो साङ्ख्ययोग के नाम से प्रचलित है।

साङ्ख्य के विषय में जो भी बातें कही हैं, उनमें ज्ञान की महत्ता आती है, उसमें कर्मयोग की भी महत्ता आती है। इन सारे विषयों पर चर्चा करने के बाद अर्जुन को समझ नहीं आ रहा कि ये बातें मिश्रित क्यों हो रही हैं? कभी कह रहे हो ज्ञान महत्त्वपूर्ण है, कभी कह रहे हो कर्म महत्त्वपूर्ण है, मेरे लिए श्रेयस्कर क्या है? उनका प्रश्न अभी भी वही है।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥

और यहाँ पर भी यही कहते हैं-

यच्छ्रेय एतयोरेकम्-

एक बात बताओ कि दोनों में से कौन सा मार्ग मेरे लिए ज्यादा उचित है। यह मैं समझना चाहता हूँ। अर्जुन को यह बात समझ में नहीं आ रही है। बार-बार एक ही बात बोल रहे हैं। कभी-कभी हमारे साथ भी हो ऐसा ही जाता है। हमें पता होने पर भी बार-बार वही बात सुनना चाहते हैं जो हमें अच्छी लगती है, क्योंकि वह बात मन में बैठ जाती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से अत्यन्त प्रेम करते हैं इसलिए उस महत्त्वपूर्ण बात को एक अलग ढ़ङ्ग से, सुन्दर तरीके से बताना प्रारम्भ करते हैं।

5.2

श्रीभगवानुवाच सन्न्यासः(ख्) कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते॥5.2॥

श्रीभगवान् बोले - संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में (भी) कर्मसंन्यास-(सांख्ययोग) से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

विवेचन- अब बात न होने पर भी उनके शब्द नये नहीं हैं। कर्मयोग से ही सम्बन्धित बात है जो पहले भी उन्होंने तीसरे और चौथे अध्याय में की है। यह बात उसी से सम्बन्धित है, किन्तु इन शब्दों में श्रीकृष्ण जी कहते हैं, साङ्ख्य एवं कर्मयोग ये दोनों ही श्रेयस्कर है। यहाँ पर जो शब्द **निःश्रेयसकर** आया है, उसका अर्थ है मोक्ष, मोक्ष का अर्थ है यहाँ से छुट्टी। जो पृथ्वी के बाद मिलता है वो ही केवल मोक्ष नहीं होता है। इस जीवन में भी हम जीते जी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इस जीवन से उन्मुक्त रहे

सकते हैं। इस धरा पर रहते हुए भी मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है? यह बताने वाला ग्रन्थ भगवद्गीता है।

भगवद्गीता में आगे देखेंगे कि मोक्ष कैसा होता है? इसमें क्या है, हम कैसे जीते जी इस मोक्ष का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

यहाँ पर **निःश्रेयसकर** की जो बात हो रही है, वह मोक्ष की बात हो रही है। **निःश्रेयसकर** अर्थात् दोनों ही साङ्ख्य एवम् कर्मयोग, हमें उस दिशा में ले जाते हैं, जहाँ ये मुक्ति का कारण बनने वाले हैं।

फिर भी अर्जुन तो कहे ही जा रहे है-
सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ

दोनों ही एक हैं किन्तु अर्जुन एक ही बात पर अड़े हैं कि एक ही बात बताइये। आगे श्रीकृष्ण जी कहने वाले हैं कि ये दोनों एक ही बात हैं, परन्तु अभी अर्जुन के समाधान के लिए-

तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते,

कर्मयोग ही श्रेयस् है, कर्मयोग ही विशेष है। कर्मयोग विशेष क्यों है, कर्मयोग श्रेष्ठ क्यों है। इसे समझने के लिए एक साधारण सा उदाहरण लेते हैं। हाल ही में हमने देखा कि कितनी वर्षा हुई है। भारत में ही नहीं अपितु सारे जगत् में इतनी भारी वर्षा हुई है। समझ लीजिए कि कोई नदी है, जिसमें बाढ़ आ गई है और नदी बहुत वेग से बह रही है, उस नदी को पार करना है और मान लीजिए अच्छे दो हट्टे-कट्टे युवक हैं, तैरना भी जानते हैं। वे आसानी से कूद कर, छलाङ्ग लगा कर पार कर लेंगे। अब उन्हीं के साथ कुछ महिलाएँ हैं, बच्चे हैं, कुछ वृद्ध हैं और ऐसे युवक हैं जिनको तैरना नहीं आता है। अब वे कैसे पार करेंगे?

मान लीजिए ऐसे समय में एक नौका तैयार हो जाती है। अच्छा सा मल्लाह आ जाता है और कहता है चलो! सब बैठो मेरी नौका में, तो सब लोग गाते-गाते आनन्द से उस नौका में एक साथ बैठ कर पार कर सकते हैं। कौनसा मार्ग अधिक सुगम है। दो युवक वाला या आनन्द से नौका में बैठ कर नदी को पार करने वाला। नौका वाला मार्ग ही अधिक सुगम है।

कर्मयोग-
इसी नौका के समान है जो हम सभी के लिए सुगम है, सरल है और इसके लिए किसी प्रकार का अनुचित त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। जब हमारा इस देह में प्रवेश होता है- जब हम जन्म लेते हैं, इस देह में आ जाते हैं तो नैसर्गिक रूप से हमारे कुछ ऐसे सम्बन्ध बन जाते हैं, संस्कार आ जाते हैं, आदतें आ जाती हैं उन्हें छोड़ना सम्भव नहीं है, किसी सम्बन्ध का त्याग करना सम्भव नहीं है। क्या ऐसी परिस्थिति में हम मोक्ष के लिए संन्यास ले पाएँगे? बात ही बड़ी विचित्र है। यह सभी के लिए सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हम ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें? यह प्रश्न जब आता है, तब यह बात समझ में आनी चाहिए कि कर्मयोग ही वह नौका है, जो इस मिथ्या संसार सागर से हमें पार ले जाएगी।

इसके लिए तैरना आवश्यक नहीं है, इसके लिए सारा साङ्ख्य समझने के जितनी बुद्धि हो यह भी आवश्यक नहीं है। कठोर तपस्या करनी पड़े, यह भी आवश्यक नहीं है। अपने जीवन में, अन्त:करण में कुछ परिवर्तन करके ही इस मिथ्या संसार सागर को पार कर सकते हैं। यह सिखाने वाला मार्ग कर्मयोग है, वह श्रेष्ठ है क्योंकि यह सर्व साधारण लोगों के लिए है, सर्व साधारण साधकों के लिए है। सभी को साथ लेकर चलने वाला सुगम मार्ग ही कर्मयोग है, इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मयोग श्रेष्ठ है। यह साधारण मार्ग है।

इसमें योग शब्द को भी सिद्ध करना पड़ेगा। एक बार कह दिया कि यह कर्मयोग है। अब कर्म समझ गए पर योग शब्द को सिद्ध करना पड़े तो इस शब्द के अनुसार जानना थोड़ा कठिन है। क्या कठिनाइयाँ हैं इसमें, क्योंकि योग वह नहीं है कि किसी प्रकार के कर्मकाण्ड में बैठ गये, साधना में बैठ गये, यह नहीं है। योग अन्त:करण से जुड़ा हुआ शब्द है। योग ऐसा है कि जो हमारे अन्त:करण से जुड़ा हुआ है पर आसक्ति भी जुड़ी हुई है। एक शब्द है जिसके साथ हम बचपन से जन्म होते ही चिपक जाते हैं और मृत्यु तक साथ रहता वह है 'मैं'। 'मैं' ये हूँ, 'मैं' श्रद्धा हूँ। 'मैं', इस शब्द से हम इतने आसक्ति से जुड़े हुए है, इस तरह से चिपक गए हैं कि इसे छोड़ना सरल बात नहीं है। कर्म फल की आसक्ति, कर्म करने काअहङ्कार, इन सारी अन्य चीजों

से हम बहुत आसक्त हैं। इन सब चीज़ों से आसक्त हुए बिना, इन्हें छोड़े बिना कर्मयोग भी योग नहीं रह जाता। कर्म में हमे कर्मयोग की सिद्धता लानी है और फिर हम उसी जगह पहुँच जाएँगे जहाँ पर साङ्ख्यदर्शन के ज्ञानयोगी हैं, वहीं हम भी पहुँच सकते हैं।

इसके लिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह सुगम है, सरल है। अत्यन्त महत्वपूर्ण है, विशेष है पर इसकी श्रेष्ठता किसमें है? कर्म, कर्मयोग बन जाए। यह कैसे होगा? कर्मयोग की महत्ता अगले श्लोक में श्रीकृष्ण बताते हैं।

5.3

ज्ञेयः(स्) स नित्यसन्न्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं(म्) बन्धात्प्रमुच्यते॥5.3॥

हे महाबाहो ! जो मनुष्य न (किसी से) द्वेष करता है (और) न (किसी की) आकांक्षा करता है; वह (कर्मयोगी) सदा संन्यासी समझने योग्य है; क्योंकि द्वन्द्वों से रहित (मनुष्य) सुखपूर्वक संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

विवेचन- कर्मयोगी सब बन्धनों से कैसे मुक्त रहता है? हमें यह तो पता है कि कर्म करते-करते हमें योगी होना है, किन्तु यह पता कब चलेगा कि योग सिद्ध हो गया। जब हम श्रीभगवान् के चित्र में देखते हैं कि उनके पीछे काफी सङ्ख्या में साधु खड़े हैं, एक वलय सा दिखाई देता है। वह हमारे लिए तो नहीं आएगी। हम कर्म करते-करते कर्मयोगी बने या नहीं इसके लिए दो चीज देखनी पड़ती हैं। अन्तरङ्ग से हम निसङ्ग हो जाएँ। पूर्ण रूप से अलग हो जाएँ, यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

पन्द्रहवें अध्याय में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है-

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा |
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा || 3||

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने कर्मयोगी के लक्षण बताए हैं। इससे व्यक्ति समझ सकता है कि वह कर्मयोग के मार्ग पर सही चल रहा है या नहीं?

सबसे प्रथम लक्षण बताया है कि कर्मयोगी को नित्य संन्यासी होना चाहिए। इसमें संन्यासी कौन है? साधारण भाषा में संन्यासी वह है, जो गेरूए वस्त्र धारण करता है और गृहस्थ आश्रम से दूर जाता है, वही संन्यासी है, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण इसे संन्यासी नहीं कहते। वस्त्रान्तर करने वाला संन्यासी नहीं है, अन्तर्मन की वृत्तियों को बदलने वाले को संन्यासी कहते हैं। संन्यास को कर्मयोगी की दृष्टि से देखते हैं। जब एक कर्मयोगी साधारण कर्म करता है तो कैसे कह सकते हैं कि वह अपने कर्म से जुड़ा होता है?

हम सब अपने-अपने कार्य से जुड़े हुए हैं और घर में हम इस पदवी के साथ रहते हैं जैसे एक डॉक्टर, इञ्जीनियर कहने लग जाए कि मैं तो डॉक्टर हूँ, मैं इञ्जीनियर हूँ, घर के साधारण काम नहीं करूँगा। मैं तो एक विशेष प्रकार का ही कार्य करूँगा तो यह भी एक प्रकार का सङ्ग हो गया।

दूसरी परिस्थिति में अगर एक भोजन बनाने वाला यह कहने लग जाए कि मैंने सबके लिए इतना स्वादिष्ट भोजन बनाया और मुझे कुछ भी श्रेय नहीं मिला। मैंने इतना सुन्दर कार्य किया, इसके बदले मुझे कुछ भी प्रशंसा नहीं मिली, मैंने इतना बड़ा दान दिया पर किसी ने मेरी कोई प्रशंसा नहीं की तो यह भी एक प्रकार का सङ्ग होता है।

जब हममें किसी कर्म को करने का अहङ्कार हो जाता है। मेरे द्वारा किये कार्य का श्रेय किसी और को दे रहे हो और यह कार्य तो मैंने किया, श्रेय पाने का यह अहङ्कार भी एक तरह का सङ्ग ही है।

हम कह सकते हैं-
कोई विशेष कार्य करना ही कर्म है।
दूसरा कर्म की फलासक्ति।
तीसरा कर्म करने का अहङ्कार।

जो व्यक्ति इन तीनों प्रकार के कर्मों का सङ्ग छोड़ देता है, त्याग कर देता है, वह अन्तरङ्ग से असङ्ग हो जाता है। जब अन्तर्मन की वृत्ति बदल जाती है, उसी का नाम संन्यास है। जब मैंने कोई कार्य किया उसके बाद भी मुझे यह लगा कार्य मैंने नहीं किया बल्कि मेरे द्वारा करवाया गया है। मेरा उसके परिणाम पर कोई हक नहीं है।

मैं कार्यालय में चाहे कितनी भी बड़ी पदवी पर हूँ, घर में, मैं एक साधारण कार्य कर लूँगा। जब हमारे इस व्यवहार की वृत्ति अन्तर्मन में आती है तब हम कर्मयोगी कहलाते हैं।

एक गीत में कहा गया है-

कर्मयोगी कृष्णं भव।

श्रीकृष्ण योगी हैं क्योंकि उन्होंने कभी कोई कार्य करके अहङ्कार नहीं किया। उन्होंने भगवान् होकर गौए भी चराईं। गोप बालको के साथ बालक बनकर खेले, गोपियों के साथ रास रचाया। अर्जुन के सारथी बने, यज्ञ में झूठी पत्तल उठाई। श्रीकृष्ण किसी भी कर्म से जुड़े ही नहीं हैं। उन्हें बाँसुरी बजाना बहुत अच्छा लगता था, किन्तु जब मथुरा की ओर प्रस्थान किया तो बाँसुरी का त्याग कर दिया, पुनः कभी हाथ नहीं लगाया।

द्वेष नहीं होना चाहिए। किसी के पास कुछ है और हमारे पास व्यवस्था नहीं है तो मन में द्वेष आ जाता है। हमारा दो चीजों से सङ्ग होता है 'मैं 'और 'मेरा'- सांसारिक और संन्यासी दोनों में अन्तर क्या है? इनमें सिर्फ अन्तर दो शब्दों से आता है 'मैं' और 'मेरा'। जब मनुष्य 'मैं' और 'मेरा' दोनों का आत्मसात् करके उसी से जुड़ा रहता है तो वह संसारी है जो 'मैं 'और 'मेरा' का त्याग करके जीवन जीता है वह संन्यासी होता है। इन दो शब्दों से संसार में संन्यासी का प्रवास कर सकते हैं और जब कामना व्याप्त हो जाती है और सोचने लग जाते हैं कि सारे विश्व का कल्याण हो तो वह संन्यासी हो जाता है। उसकी आकाँक्षा स्वयं के लिए न हो कर संसार के लिए होती है। धीरे-धीरे वह आकाँक्षा यज्ञ के रूप में रूपान्तरित हो जाती है, क्योंकि वह आकाँक्षा लोक कल्याण के लिए होती है।

इस प्रकार के द्वन्द्व हमारे जीवन में रोज आते हैं। सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, अपना-पराया जो इन दोनों विपरीत परिस्थितियों में एक बराबर रहता है, समदृष्टि रखता है वह निर्द्वंद्व होता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को महाबाहो कहकर याद दिला रहे हैं। अर्जुन की स्मृति में नहीं है, उनको श्रीभगवान् बता रहे हैं कि तुम्हारे अन्तर्मन में भी सारे गुण हैं। व्यक्ति राग-द्वेष आदि दोनों द्वन्द्व से रहित होकर बहुत सुखपूर्वक, सहजता से सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। यही स्थिति साङ्ख्ययोगी व ज्ञानयोगी की भी है। दोनों की अन्तर्मन अवस्था एक जैसी है, दोनों में एक बात प्रमुख है, चित्त की ऊँचाई। दोनों को ही चित्त से ऊँचा उठना है, एक काम करते-करते उठेगा और एक साधना करते-करते उठेगा। हम इन दोनों को अलग-अलग समझते हैं कि कर्मयोगी अलग है और साङ्ख्ययोगी अलग है।

5.4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः(फ्), प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः(स्) सम्यग्, उभयोर्विन्दते फलम्॥5.4॥

नासमझ लोग सांख्ययोग और कर्मयोग को अलग-अलग (फल वाले) कहते हैं, न कि पण्डितजन; (क्योंकि) (इन दोनों में से) एक साधन में भी अच्छी तरह से (स्थित) मनुष्य दोनों के फलरूप (परमात्मा को) प्राप्त कर लेता है।

विवेचन- भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह विषय बाल बुद्धि वाला विषय हो गया। कर्मयोग का अर्थ है विशेष योग और

साङ्ख्ययोग का अर्थ विशेष ज्ञान, पर विद्वानों की सोच अलग है। दोनों का फल एक ही है जो फल कर्म योगी को प्राप्त होगा, वही फल साङ्ख्ययोगी को प्राप्त होगा। भगवान श्रीकृष्ण विद्वानों की दृष्टि का विस्तार करते हुए, अगले श्लोक में अर्जुन को समझाते हैं-

5.5

यत्साङ्ख्यैः(फ्) प्राप्यते स्थानं(न्), तद्योगैरपि गम्यते।
एकं(म्) साङ्ख्यं(ञ्) च योगं(ञ्) च, यः(फ्) पश्यति स पश्यति॥5.5॥

सांख्ययोगियों के द्वारा जो तत्त्व प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। (अतः) जो मनुष्य सांख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने अपने मन की बात अर्जुन को स्पष्ट रूप से इस श्लोक में कह दी, जो वे आरम्भ से कहना चाहते थे। कर्मयोगी और साङ्ख्ययोगी, तुम्हें ये दोनों अलग-अलग लगते हैं और तुम मुझसे बार-बार पूछ रहे हो क्योंकि तुम इसमें से एक का चयन करना चाहते हो पर तुमने यह बात समझी ही नहीं है, इसलिए तुम्हें यह दोनों अलग-अलग लगते हैं। ज्ञानयोग से जहाँ हमें पहुँचना है वहाँ कर्मयोग से भी पहुँच जाएँगे। जिसने इन दोनों को एक माना है उसे ही तत्त्व की प्राप्ति हो गई है।

हमारे हाथ में अगर कोई कोयला पकड़ा दे तो कोयला तो कोयला है यह सबको पता है, किन्तु कोई हीरा पकड़ा दे तो आँखों में एकदम चमक आ जाती है। इन दोनों को किसी वैज्ञानिक के पास ले जाएँ तो वह कहेगा कि ये दोनों ही कार्बन हैं, दोनों का तत्त्व एक ही है। एक का दाब व तापमान कम होता है, इसलिए कोयला है। दूसरे का अधिक होता है तो वह हीरा बन गया। वैज्ञानिक तत्त्व ज्ञानी है, क्योंकि उसे पता है कि दोनों का मूल तत्त्व एक ही है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम ऐसे तत्त्वज्ञानी बनो जो यह समझ जाता है कि दोनों का मूल तत्त्व एक ही है। जैसे वैज्ञानिक कोयला और हीरा दोनों का मूल तत्त्व समझ जाता है, ऐसे ही तुम बालक बुद्धि मत बनो, एक विद्वान की तरह समझो।

साङ्ख्ययोग और कर्मयोग दोनों का मूल तत्त्व एक ही है। जो दोनों को एक समान देखता है, वह वास्तव में यथावत् स्वरूप को देखता है। हम जानते हैं कि आदि शङ्कराचार्य जी, रामानुजाचार्य बहुत ज्ञानी हैं। जो गति इन्हें प्राप्त हुई है, वही गति एक कर्मयोगी को प्राप्त हो सकती है। यही बात श्रीकृष्ण ने सुस्पष्ट और सुन्दर रूप में अर्जुन को समझा दी, किन्तु दोनों कठिन हैं, इसका वर्णन श्रीभगवान् अगले श्लोक में करते हैं।

5.6

सन्न्यासस्तु महाबाहो, दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति॥5.6॥

परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि संन्यास के बिना कर्मयोग सम्भव नहीं है, न ही ज्ञानयोग सम्भव है। ज्ञानयोग के बिना संन्यास भी सम्भव नहीं है। यदि अन्तर्मन से आसक्ति का त्याग नहीं किया और बाहर के नियमों को कितना भी नियन्त्रित कर लें, अन्दर से मन आसक्ति में लिप्त है तो वह कितनी भी सिद्धियों को सिद्ध कर लें वे सिद्ध नहीं होती और ज्ञान भी सिद्ध नहीं होगा।

ज्ञान का अर्थ सिर्फ शास्त्रों का अध्ययन करने से या उन्हें जानने से नहीं होता। ज्ञान का अर्थ अपने अन्दर अनुभूति उत्पन्न करना होता है। ज्ञान को हम देख नहीं पाते अपितु ज्ञानी के व्यवहार से हमें यह पता चल जाता है। तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने ज्ञानी के लक्षण बताये हैं। तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान् द्वारा बताए गए लक्षण किसी ज्ञानी को जानने का परीक्षण है। किसी मनुष्य में ज्ञानी के लक्षण दिखाई देते हैं तो उस ज्ञानी का ज्ञान सिद्ध हो जाता है। ज्ञानी को ज्ञान प्राप्त करने में बहुत श्रम करना पड़ता है परन्तु कर्मयोगी का मार्ग थोड़ा सहज है।

कर्मयोगी को योग युक्त बनना है। कर्म करते-करते जब मनुष्य में कर्मयोगी के लक्षण आने लगते हैं तब वह स्थिति योगयुक्त की होती है। कर्मयोगी ऐसी परिस्थिति में आने पर बहुत जल्दी ज्ञानमार्ग पर पहुँच जाता है। हम मनुष्य कर्मयोग करते-करते ज्ञानयोग को समझ सकते हैं। कर्म करते हुए कर्मयोगी बन जाएँ, कर्मयोगी से योगयुक्त बन जाएँ तो स्वयं ही ज्ञानमार्ग पर पहुँच जाएँगे।

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने मुनि का अर्थ बड़े सुन्दर ढङ्ग बताया है। जो मननशील है, जो चिन्ताशील है, जो व्यक्ति स्वयं के अन्दर के मन में यह परख लेता है कि मैं कितना निःस्वार्थ हुआ हूँ, कितना अहङ्कार अभी बाकी है या मेरी इच्छाएँ कम हुई हैं। जो इन सब का मनन और चिन्ता अपने अन्तर्मन में निरन्तर करता रहता है, वह मुनि है। योग करते-करते जब मुनि बन जाएँ तो वह व्यक्ति ब्रह्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

भागवत् में एक बहुत ही सुन्दर कथा का प्रसङ्ग है। गोकर्ण ने जब धुन्धकारी के लिए भागवत् कथा की थी तब वहाँ पर सारा ग्राम उपस्थित था, परन्तु विष्णु के दूत रथ लेकर धुन्धकारी को ही ले जाने के लिए आए थे। गोकर्ण ने विष्णुदूत से पूछा कि कथा पूरे ग्राम वासियों ने सुनी परन्तु आप सिर्फ धुन्धकारी को ही क्यों ले जा रहे हैं? विष्णुदूत कहने लगे कि कथा सबने सुनी पर मनन केवल धुन्धकारी ने किया। बुरे कर्मों का प्रायश्चित, मुझे आगे क्या नहीं करना चाहिए, इसलिए मोक्ष केवल धुन्धकारी को मिला है।

परमात्मा को प्राप्त करने का एक स्वतन्त्र साधन श्रीभगवान् ने कर्मयोग को बताया है।

5.7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥5.7॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसका अन्तःकरण निर्मल है, जिसका शरीर अपने वश में है (और) सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा है, (ऐसा) कर्मयोगी (कर्म) करते हुए भी लिप्त नहीं होता।

विवेचन- जब हम कुछ पढ़ रहे हैं, कुछ काम कर रहे हैं या कुछ लिख रहे हैं और अचानक हमारे सामने किसी वस्तु का विज्ञापन आ गया तो हमारा ध्यान अपने कार्य से हटकर यह सोचने में लग जाता है कि यह वस्तु, यह पदार्थ हमें प्राप्त कर लेना चाहिए। यह तो बड़ा अच्छा है। अगर हम बाजार में जा रहे हैं और किसी दुकान में कुछ आकर्षित करता हुआ उत्पाद देख लें तो मन उसकी तरफ आकर्षित हो जाता है और उसके बारे में जानने के लिए उस दुकान में चले जाते हैं। हम अपनी तरफ से प्रयास तो करते हैं कि हम अपनी इन्द्रियों को जीत लें, किन्तु अकस्मात् किसी आकर्षण के आने से भटक जाते हैं। योगी को इन सब बातों से कोई अन्तर नहीं पड़ता, वे अपने मार्ग में निश्चित रहते हैं।

जैसे एकादशी के दिन घर में कोई पकवान बना लें जो हमें बहुत पसन्द हो तो हमारा मन यही सोचने लगता है कि आज हमारा उपवास है फिर भी पकवान बना लिया। जिन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, उनको कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हें कोई इच्छा नहीं होती। ऐसा व्यक्ति, चाहे कितने भी कर्म कर ले, उसमें लिप्त नहीं रहता। जिसने यह अनुभव किया है कि सब भूतों में एक ही परमात्मा है, वह कर्मयोगी किसी भी कार्य से लिप्त नहीं होता। साधारण मनुष्य जो भी कार्य करता है, उससे जुड़ जाता है। कर्म करने से कामना, कामना से कर्म, हम ऐसे ही चक्र से जुड़े रहते हैं। कर्मयोगी अपने गुण के कारण किसी भी कर्म के साथ लिप्त नहीं होते हैं।

आगे के श्लोक में श्रीभगवान् ने साङ्ख्ययोगी के लक्षण का वर्णन किया है। कर्मयोगी विचलित नहीं होते, उनको अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। उनकी सभी व्यक्तियों के प्रति, सब भूतों के प्रति, हर प्राणी मात्र के प्रति समता की दृष्टि होती है।

5.8

नैव किञ्चित्करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्, नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी (मैं स्वयं) कुछ भी नहीं करता हूँ - ऐसा माने (अतः) देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ,

5.9

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्, नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥

बोलता हुआ, (मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखें खोलता हुआ (और) मूँदता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में बरत रही हैं' - ऐसा समझे।

विवेचन- साङ्ख्ययोगी कुछ भी कर्म करते समय हमेशा यही कहते हैं कि यह कार्य 'मैंने नहीं किया', ईश्वर की कृपा से हुआ है।

तृतीय अध्याय मे श्रीभगवान् ने कहा है-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।।3.27।।

अहङ्कार के कारण जो व्यक्ति अभी कर्मयोगी बना नहीं है, कर्म करके यह मान लेता है कि यह कर्म उसके द्वारा हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत छोटी-छोटी क्रियाओं का वर्णन इस श्लोक में किया है। देखते हुए, सुनते हुए, किसी को स्पर्श करते हुए, सूँघते हुए, खाते हुए, साँस लेते हुए, कहीं जाते हुए, कहीं से आते हुए, सपने देखते हुए, कहीं बात करते हुए, किसी वस्तु का त्याग करते हुए, किसी को स्वीकार करते हुए, आँख बन्द करते हुए, आँख खोलते हुए, इन सब छोटी क्रियाओं के करने पर भी साङ्ख्ययोगी इन पर स्वयं का नियन्त्रण नहीं मानते हैं। साङ्ख्ययोगी, ये सब कार्य परमपिता परमात्मा के द्वारा हो रहे हैं, ऐसा मानते हैं। साङ्ख्ययोगी की यह विशेष धारणा है। इन्द्रियाँ अपने विषयों में जो आनन्द ले रही हैं, वह सब परमात्मा के द्वारा ही हो रहा है। यह भगवद् अर्पण की बुद्धि साङ्ख्ययोगी और कर्मयोगी, दोनों में होती है।

5.10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥5.10॥

जो (भक्तियोगी) सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके (और) आसक्ति का त्याग करके (कर्म) करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

विवेचन- कर्मयोगी और साङ्ख्ययोगी ने सब कुछ यह सोचकर छोड़ा हुआ है कि जो भी कार्य हो रहा है भगवत्कृपा से हो रहा है। हर कर्म भगवद् अर्पण है। जो भी कार्य हो रहा है वह 'मेरे द्वारा' नहीं हो रहा है, यह अहङ्कार पूर्णता पर ही शून्य हो रहा है। दोनों प्रकार के योगी किसी भी कर्म में लिप्त नहीं हैं। वे इसलिए ऐसा कर पाते हैं क्योंकि अपने आप को उनसे जोड़कर नहीं रखा है। उनको अन्तरङ्ग आत्मा में यह बात पता है कि जो भी कार्य उनके द्वारा हो रहा है, वह भगवत्कृपा के द्वारा हो रहा है।

'**श्रीकृष्णार्पणमस्तु**'।

।। "मैं, मेरा, यह कहने वाला कण्ठ भी किसी और का है दिया" ।।

वे जानते हैं कि, मैं, मेरे द्वारा, भाव भी परमात्मा के द्वारा ही मिला हुआ है। इनकी अलिप्तता का अद्भुत वर्णन एक उदाहरण द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

जैसे कमल का फूल निरन्तर जल में रहता है, फिर भी वह गीला नहीं होता। निरन्तर पानी के स्पर्श में रहते हुए भी वह जल से लिप्त नहीं रहता है। हमारा अन्तरङ्ग स्पञ्ज जैसा होता है, थोड़ा सा भी पानी में गीला हुआ तो तुरन्त सोख लेता है। हमारे मन की वृत्ति भी ऐसी ही होती है।

कर्मयोगी और साङ्ख्ययोगी के मन की स्थिति-
'पद्मपत्रमिवाम्भसा' जैसी होती है। संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण ऐसा ही होता है इसलिए उनके द्वारा पाप भी हो जाए तब भी उससे लिप्त नहीं होते हैं।

विवेकानन्द जी महाराज कहते हैं, कोई नौका या जहाज पानी के ऊपर तब तक तैरता है जब तक उसके अन्दर कोई छेद न हो जाए। जैसे ही छेद हो जाता है तो उसके अन्दर जल भरने लगता है। नौका या जहाज डूबने लगता है। हम साधारण मनुष्यों का मन भी उस नौका की तरह है, किसी न किसी छेद से यह संसार हमारे अन्दर आ रहा है और हम संसार में डूबते ही जा रहे हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति, साङ्ख्ययोगी का अन्तरङ्ग नौका के समान जल के ऊपर तैरता ही रहता है। जल उसके अन्दर नहीं आ सकता, अर्थात् संसार के अन्दर रहकर संसार से लिप्त नहीं होता और नौका के समान तैरते- तैरते भवसागर से पार हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण इस अध्याय में यह बताना चाहते हैं कि हमारे अन्तरङ्ग की वृत्ति या परिस्थिति ऐसी होनी चाहिए।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- आदर्श भैया

प्रश्न- मैंने पढ़ा है कि सञ्जय महाभारत युद्ध के दसवें दिन धृतराष्ट्र के पास आये थे, क्या यह सत्य है कि सञ्जय पहले दिन से ही धृतराष्ट्र को युद्ध का आँखों देखा वर्णन चित्रित कर रहे थे?

उत्तर- मैंने भी साधक सञ्जीवनी में पढ़ा है कि नवें दिन सञ्जय धृतराष्ट्र के पास वापस आये, तब उन्होंने पूरी कथा सुनाई।

प्रश्न- भगवान् श्रीकृष्ण एवम् अर्जुन के मध्य होने वाला वार्तालाप श्लोक रूप में हुआ था या साधारण संवाद के रूप में?

उत्तर- यह बात मुझे भी ज्ञात नहीं है, हमारे लिये यह महत्त्वपूर्ण है कि भगवान् वेदव्यास जी ने हमारे समक्ष गीता उस रूप में रखी, जिससे वह हमारे लिये सबसे ज्यादा ग्राह्य हो। सम्भव है कि वह संवाद रूप में हुआ हो।

प्रश्न- आज बहुत से लोग गीता के बारे में चर्चा करते हैं, हमें उस चर्चा में भाग लेना चाहिये या नहीं?

उत्तर- आप जितना गीता के विषय में बोलेंगे, उतना अच्छा ही है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम गीता पढ़ें दूसरों को भी उसके विषय में बतायें, यदि हो सके तो उसे हमारे प्रकल्प से जोड़ें। यदि किसी विषय में स्वयम् निश्चित न हों तो उसकी जानकारी न दें।

प्रश्नकर्ता- ललितेश भैया
प्रश्न- पाँचवे अध्याय के तीसरे श्लोक में जो बातें कही गई हैं क्या आज के युग में वह कर पाना सम्भव है?

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।

निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

उत्तर- असम्भव तो कुछ भी नहीं है। यदि हमें प्रतीत होता है कि यह दुष्कर है तो इसे अपने जीवन का लक्ष्य बना लें कि हमें वहाँ पहुँचना है। हमारे सामने ही गुरुदेव श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज, सन्त ज्ञानेश्वर महाराज, सन्त गुलाबराव महाराज, सन्त तुकाराम महाराज सब कलियुग के ही हैं। यदि कक्षा एक के विद्यार्थी को दसवीं कक्षा के गणित का सवाल करने के लिये देंगे तो वह नहीं कर पायेगा। वही प्रश्न दसवीं मे पहुँचने पर वह सरलता से कर लेगा। हमें अभ्यास द्वारा अपना स्तर धीरे-धीरे ऐसा बढ़ाना है कि हमें सब विषय सम्भव लगने लगें।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||

Sum-Hi-5(1_3)-SR-L3Apr25-051025/7996/v1/251006-2320